© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 05 | May 2018

"कौटिल्य सम्मत राजधर्म विवेचन"

सुरेश,

सारांश

कौटिलीय–अर्थशास्त्र भारतीय राजनीतिक ग्रन्थों में देदीप्यमान अमूल्य रत्न है। राजा के गुणविवेचन, अपेक्षित बुद्धिविवेक तत्वों के परिशीलन से यह कहना अत्यन्त सरल है कि कौटिल्यसम्मत राजधर्मसिद्धान्त राजा को उसी उत्तमराजधर्ममार्ग पर प्रशस्त करते है जहाँ के लिए वह वाञ्छनीय है। अर्थशास्त्र वर्णितधर्मानुगत–नीतिविज्ञान के अध्ययन से साम्प्रदायिक भयावहक राजनीतिक परिवेश को भी रामराज्य की परिकल्पना में परिवर्तित करना दुरूह कार्य नहीं लगता। कौटिल्य वर्णित राजधर्म आजकल के परिवेश में भी उसी प्रकार उपादेय है जैसे चन्द्रगुप्त के समय में था।

ISSN 2454-308X
9 770024 543081

विषय प्रवेश

विश्वेतिहास के पृष्ठ पलटने से इस बात का अनुमान बडी सहजता से हो जाता है कि जब इस सृष्टि का आरम्भ हुआ तभी से राजनीतिक–संकल्पनाएँ भी प्रादुर्भूत हो चुकी थी । क्रमिकविकास के फलस्वरूप सम्प्रति 'शासक' और 'शासित प्रजा' की पृथक्–पृथक् अवधारणाएँ सुस्पष्ट हैं ।

शासक प्रजा पर नियन्त्रण की उत्तम प्रणाली ढूंढता है तो प्रजा शासन पर काबू पाने की, शासक निर्विरोध शासन चाहता है जबकि जनता जनहितैषी शासन। एवं दोनों एक दूसरे पर सबल बनने का यत्न करते हैं। सनन्तुलन के बिगड़ने पर बलवान् निर्बल को दबातां है। बहुधा दृष्टिगोचर हुआ है कि. शासक ही अधिक शक्तिशाली बनने में सफल हुआ है। फिर जनता क्रान्तियों द्वारा स्वाधिकार के लिए लड़ती है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए चिन्तकों ने अनेक चिन्तालोडित सिद्धान्त प्रस्तुत किए। ऐसे सिद्धान्त निर्माताओं की परम्परा के रूप मेंही 'अर्थशास्त्र' प्रणेता आचार्य कौटिल्य का प्राकट्य हुआ ।

प्राक्–कौटिल्य राजनीतिक चिन्तन

'य: प्राणतों निर्मिषतों महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव"'[1]

[1] श: ऋग्वेद ; 0/3223

इस प्रकार हम देखते हैं कि परमेश्वर को ही जगत् का स्वामी कहा गया हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में देव–असुर युद्ध–कथा प्रसज्न आता है। जहाँ असुर विजयी होते हैं। देवों ने अपनी पराजय–समीक्षा में नेतृत्व–विहीनता को मुख्यकारण के रूप से स्वीकृत किया।[2] वैदिक–पौराणिक साहित्य में मनु को आदिम राजा स्वीकृत किया गया है। उननिषदों में शरीर पर नियन्त्रण करने के लिए 'आत्मा' को नियमन्त्रक (राजा) बतलाया हैं। उपरोक्त जगह 'राजा' के महत्त्व को स्वीकार किया हैं। अन्यों से राजा में अधिक गुण वर्णित किए गए हैं। जान पडता हैं कि वैदिक–साहित्य से ही राजनीतिक–चिन्तन अंकुरित होता है। लौकिक–साहित्य में तो स्पष्ट राजनीतिक–व्यवस्था दृष्टि गोचर होती है।

गृह्व–सूत्र में तो 'आदित्य' नामक अर्थशास्त्रविद् आचार्य का स्मरण किया है:।[1] महाभारत–रामायण आदि ग्रन्थों में तो राजनीतिकपरक–विचारधारा को स्थान–2 पर चित्रित किया है। राम जनप्रसन्नता के लिए पत्नी सीतातक का परित्याग कर देता है। यह राजधर्मपालन को सर्वोत्कृष्ट दुष्टान्त हैं। भीष्मपितामह राज्य को सुरक्षित हाथों में देने के बाद ही प्राणत्याग करता है। स्मृतिग्रन्थों में तो राजधर्म की बहुचर्चा है।

आचार्य कौटिल्य स्वयं अपने अर्थशास्त्र में अपने पूर्ववर्ती 8–19 आचार्यों का उल्लेख करते हैं।

आचार्य कौटिल्य का परिचय

आचार्य का वास्तविक नाम विष्णुगुप्त 'चाणक्य' है। 'कौटिल्य' नाम के प्राय: दो कारण सामने आते है। एक तो वे नीति में कुटिल थे, दूसरा यह नाम उनके गौत्र की ओर संकेत करता है।

भारतीय इतिहास के उदीयमान नक्षत्र और मौर्यवंश के महाप्रतापी सम्राट् चन्द्रगुप्त ने विष्णु गुप्त नामक एक उद्भट्ट ब्राह्मण की सहायता से नन्दवंश को विनष्ट करके शक्तिशाली यवनराज सिकन्दर के सम्पूर्ण प्रयत्नों को विफल करके लगभग 321 ई० पू० एक विराट् साम्राज्य की स्थापना की। लगभग 24 वर्ष तक राज्यभार संभाला। राजा के प्रशासन की मूल नीतिनिर्धारक आचार्य कौटिल्य ही थे।

[2] ऐतरेय ब्राह्मण : ॥/4

---

1. आप्स्तंष - धर्मसूत्र : 2, 5, 10, 14

काटिल्य-अर्थशास्त्र एक परिचय

चन्द्रगुप्त का समय लगभग ई० पू७ चौथी शताब्दी ठहरता है। वही समय आचार्य और उनकी रचना का ठहरता है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन सबसे पहले 1909 ई० में मैसूर राज्य की ग्रस्थशाला के अध्यक्ष श्रोयुत शामशास्त्री ने कराया। प्ररिश्रमपूर्वक्त आंग्लानुवाद भी किया।

कहीं-कहीं त्रुटिपूर्णानुवाद होने पर भी अतिश्ल्घ्नीय कार्य उन्होंने सम्पादित किया ।[1]

मूलग्रन्थ में 15 अधिकरण, 180 प्रकरण, 150 अध्याय हैं ।कुलसूजसंख्या 572 है । आचार्य ने भी स्वोपज्ञन टीका लिखी थीं। प्रभामती की चाणक्य टीका, कामसूत्रटीकाकार की ' जयमगला' टीका अधिक प्रचारित टीकाएँ है।

राजधर्म का अर्थ

राजा का तद्देशप्रजा के प्रति जो कर्त्तव्य है, सामान्य शब्दों में उसे ही राजधर्म कहते है। राष्ट्रबासी प्रजा की रक्षा करने वाले को 'राजा' कहते है। वेदों में प्रार्थना की गई है कि' मुझे बहुत बड़े जनसमुदाय का रक्षकः बना दो।"[2] रक्षक नाम राजा का होता है। राजा को बहुत से नामों से पुकारा जाता है यथा महाभारत में

"राजा भोजों विराद सम्राट क्षत्रियों भूपतिर्नृप:।

ए एभि: स्तूयते शब्दै: कस्तै नार्चितुमरहति॥"[3]

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र, प्रथम भाग, उदयवीर शास्त्री, 7969 (उपादेघात)
2. ऋग्वेद ३/43/5
3. महाभारत शाकित पर्व, 68/54

इन सभी नामों में राजा को विशेषताएँ झलकती है। जगत् को विविध प्रकार से प्रकाशित करने में सफल होने वाले शासक को विराट् कहते है। इसी प्रकार से सभी राजा के कर्त्तव्य हैं, उसकी उपाधि हैं, यही राजधर्म है।"राजानां मह ऋतस्य गोपा" अर्थात् महान सत्य का रक्षक राजा है।

वस्तुत: प्रजा को धारण करने वाले नियमों को धर्म कहते है। धर्म शब्द का अर्थ है धारण करना। जो सबको धारण करता हैं वह धर्म है।[1]

"धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृता: प्रजा:।

यः स्थात् धारणसंयुकतः स धर्म: इति निश्चय:॥"[2]

चार्वाक् लोग प्रत्यक्षत: राजा को ही भगवान् कहते है। सुप्रतिष्ठित हरियाणवी काव्यकार पं० लख्मीचन्द जी के शब्दों में राजा और राजधर्म –

"हर ते नीचै प्रजा तै ऊपर ओ सबकाए मालिक हो सै"[3]

प्रजा सन्तुष्टि के लिए धर्मानुकूल राजा का प्रत्येक आचरण राजधर्मकहलाता है ।

कौटिल्य और राजधर्म

पूर्वाचायों की भान्ति कौटिल्य ने भी राज्य के सप्तांग स्वीकृत किए है। कौटिल्य ने राजकार्य चलाने के लिए कुछ सिद्धान्तों का विवेचन किया है। बतलाया है कि उत्तमराजा द्वारा इन नियमों का पालन करना चाहिए जोकि धमनुसार नियम हैं। _____

1. ऋग्वेद ; 7/64/2
2. महाभारत शक्तिपर्व : 1091
3, रलकोष, सांग "विराट पर्व' ।

राजधर्म के न्यायोंचित निर्वहण के लिए सप्तांगों के साथ सेना–प्रकार, षाड्गुण्य, दूतविवेचन, गुप्तचर–श्रेणी, दायचिधाग, साक्षिस्वरूप, वाकपारूष्य, दण्डनीति आदि विस्तारपूर्वक व्याख्या प्रस्तुत कौ हैं।

सप्तज्ञों में सर्वप्रथम राजा का विवेचन किया हैं जो कि राज्य कोआत्मा हैं। राजा के अपेक्षित गुणों की ब्याख्या प्रम्तुत की है। उच्चकुलीन, शौलबान्, धर्मनिष्ठ, सत्यवादी, कृतज्ञ, बलवान्, उत्साही, विनयशोल, विवेकौं, तर्क–बितर्क प्रवीण, निर्णायक आदि गुण सम्पन्न राजा ही अपने उत्तम धर्म का निवर्हि कर सकता है।

सचिव या मन्त्री को अमात्य कहा है, सन्मन्त्री हो राजा को उत्तमपथ दिखलाता है वह राजधम के निर्वहण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। जनपद का अपरनाम 'राजघानी' है। वह राज्य से

अधिक सुरक्षित व महत्त्वपूर्ण होती है। वहीं से राजा पूर राज्य पर शासन करता हैं। राजधर्म पालन में जनपद की भो विशेष भूमिका है।

औदक–पार्वत–धान्वन–वन दुर्ग निर्माण द्वारा राजा राज्य कौ विभिन्न परिस्थितियों में रक्षा करता है। कोष पर अत्यधिक ध्यान अपेक्षित है। राजा इतना धन अलग से संग्रह करके रखे कि अकाल आदि कौ स्थिति में प्रजा पोषण संभव हो सके।

सेना का विभाजन कुशल शासक को सात भागों में करना चाहिए। राजधानी सुरक्षा के लिए मॉलसेना होनी चाहिए। भृत्य, श्रेणों, मित्र अमित्र, आटविक, ऑऔत्साहिक नामक अन्य छः सेनाओं का भी विभाजन कर समयानुकूल प्रजा रक्षण के लिए राजा ने उपयोग करना चाहिए। मित्र सप्तम अन्न है।

पाड्गुण्य ज्ञान भी कुशलप्रशासन के लिए अत्यावश्यक हैं जिससे वो उत्तमतया राजधर्म का निरवहण कर सके। सन्धि–विग्रह–यान प्रयोगविधि की जानकारी से ही एक शासक अपने राज्य की शत्रु से रक्षा कर सकता है।

ऋग्वेद में 'अग्नि' को देवदूत कहा है। उसी प्रकार सुशासक भी राज्यसंवृद्धि के लिए दूतनियुक्ति करता है। निसृष्टार्थ–परिमितार्थ शासनहर नामक तीन श्रेणियों में विभक्त किया है। एक दूत दूसरे राज्य में जाकर दोनों राज्यों के द्विपक्षीय सम्बन्धों में मजबूती लाता है। जिससे शांतिपूर्वक परिवेश में जनता समुन्नत होती है। गुप्तचर नियुक्ति से भी राजा प्राजापोषण अति–उत्तमरीत्या करता है। राज्यशान्ति भड् करने वाले शरारती तत्वों का अन्वेषण, शत्रुराज्य के सूचनाप्राप्त गुप्ताधिकारियों का अन्वेषण गुप्तचर द्वारा राजा करता हैं। उनको विनष्ट करके स्वराजधर्म पालन में अधिक सक्षम बनता है। पुत्र–पुत्री–पौत्रादियों में सम्पत्ति का विभाजन न्यायोचित्तरीत्या करके राजा राजधर्म का निर्वहण करता है। ब्राह्मण–क्षत्रिय आदि वर्णों के व्यक्ति द्वारा स्ववर्णेतर व्यक्ति से गलत व्यवहार करने पर दण्ड विधान भी किया है। वर्णप्रधानताक्रम से दण्ड विधान है। उस दण्ड प्रक्रिया में साक्षिस्वरूप का वर्णन भी आचार्य ने विस्तारपूर्वक सम्पादित किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. शः ऋग्वेद ; 0/3223
2. ऐतरेय ब्राह्मण : ॥/4